इकाई 8 पुराण की परिभाषा, लक्षण एवं संख्या

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 पुराण–सामान्य परिचय

8.3 पुराण शब्द का अर्थ

8.4 पुराण–लक्षण

8.4.1 दश लक्षण

8.5 पुराणों की संख्या

8.6 पुराणों का क्रम

8.7 सारांश

8.8 अभ्यास

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

- पुराणों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे;
- पुराण का अर्थ जान सकेंगे;
- पुराणों के लक्षण के विषय में जान सकेंगे;
- पुराणों की संख्या के विषय में जान सकेंगे; और
- पुराणों के क्रम को जान सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

पुराणों ने न केवल भारतीय जनमानस को ही अपने पवित्र ज्ञान से आप्लावित किया है। अपितु समस्त विश्व में इनके ज्ञान का डंका बजता रहा है। इन्होंने शिक्षा से हीन जनों में शिक्षा के वास्तविक स्वरूप का प्रचार कर अपनी उपयोगिता को स्वतः सिद्ध किया है। प्रस्तुत इकाई में पुराणों का सामान्य अध्ययन किया जायेगा, जिसके अन्तर्गत पुराण क्या है, किसे कहते हैं? इनकी संख्या और क्रम का अध्ययन किया जाएगा।

8.2 पुराण–सामान्य परिचय

इतिहास और पुराण को प्राचीन साहित्य में समान स्तर पर देखा गया है। उमाशंकर ऋषि ने संस्कृत साहित्य का इतिहास के पुराण साहित्य अध्याय में वेदों के क्लिष्ट कर्मकांड को रोचक बनाने के लिए चार प्रकार के साहित्य प्रथम इतिहास, द्वितीय पुराण, तृतीय गाथा और चतुर्थ नाराशंसी को बताया है।

पुराण का प्रयोग पुरावृत्त तथा पुरातत्व से संबंधित सृष्टि प्रलय, भूगोल, आकाश मंडल इत्यादि के विवरण के लिए किया जाता था। गाथा के अंतर्गत प्राचीन नैतिक, वास्तविक और काल्पनिक कथाएँ आती हैं जैसे इंद्र वृत्र की कथा, पुरुरवा उर्वशी की कथा, विश्वामित्र नदी संवाद इत्यादि। नाराशंसी के अंतर्गत वीरों की प्रशंसा, वीर गाथाएं, वीरों के अभिनंदन इत्यादि आते थे जैसे–ययाति नहुष, परीक्षित इत्यादि से संबद्ध प्रशंसा।

वैदिक युग के उक्त पारिभाषिक शब्दों को संक्षिप्त करने पर नई अर्थव्यंजना आरोपित की गई। पुराणों में पुराण शब्द में ही समस्त वेदों का अंतर्भाव कर लिया गया। जिसके पश्चात संस्कृत साहित्य में पुरानी विधाओं के पुनरुद्धार के कारण इतिहास को ऐतिहासिक काव्य के रूप में, पुराण को केवल पौराणिक ग्रंथों के रूप में, गाथा को संस्कृत कथाओं के रूप में और नाराशंसी को रामायण, महाभारत आदि वीरकाव्यों के रूप में समझा जाने लगा।

पुराण भारतीय साहित्य के भव्य प्रासाद का आधारस्तम्भ है। संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, पुराण खण्ड के अनुसार– पुराण प्राचीन इतिहास मन्दिर का स्वर्ण कलश है। नानाविध ज्ञान विज्ञान सागर में संतरण करने वाले पोत का प्रकाशदीप है और मानव जाति की अनादि काल से संचित विद्याओं की सुदृढ़ मनोरम मञ्जूषा है। पुराण वस्तुतः अतीत को वर्तमान से जोड़ने वाली कनकमयी श्रृंखला है। यह भारत की धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक विचार सम्पदा का अक्षय भण्डार है। भाषा की सरलता एवं क्रमबद्ध कथा शैली के कारण प्राचीन होकर भी नवीनतम स्फूर्ति को संचारित करने में पुराण विशेष महत्व रखता है। भारत की सनातन संस्कृति पुराण साहित्य पर ही अवलम्बित है।

पुराणेतिहास के स्वरूप विश्लेषण का पुराण ने वेदों की अध्यात्मविद्या को स्पष्टतः स्वीकार कर उसे लोकजीवन में गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। प्रतीकात्मक वैदिक तत्त्व अवगत होने के लिए व्याख्या की अपेक्षा करता है। अतः **इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्** वेदव्यास की यह स्पष्टोक्ति पुराण के रचना की बीज रूप में देखी जाती है। इस दृष्टि से वेदविद्या का ही अवान्तररूप पुराण विद्या है। स्कन्द पुराण स्पष्टरूप से पुराण को वेद की आत्मा मानता है– **आत्मा पुराणं वेदानाम्**। पुराणों में ही वेद की प्रतिष्ठा निहित है।

वेदवन्निश्चलं मन्ये पुराणार्थं द्विजोत्तमाः।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।। (स्कन्द पुराण, प्रभाष खण्ड, २.६०)

नारद पुराण में पुराण को सभी वेदों के अर्थों का सार कहा गया है–

सर्ववेदार्थसाराणि पुराणानीति भूपते। (नारदपुराण १.६.१००)

पुराण की सर्वशास्त्रमयता स्कन्दपुराण में स्पष्टतः उल्लिखित है। इसी कारण पुराण को पंचम वेद भी कहा गया है–

पुराणं पञ्चमो वेद इति ब्रह्मानुशासनम्।
यो न वेद पुराणं हि न स वेदान्न किञ्चन।।

छान्दोग्योपनिषद् में विद्याओं की सूची में पुराण का उल्लेख पञ्चम वेद के रूप में निर्दिष्ट है। इस प्रकार वेद और उपनिषद् की पृष्ठभूमि में पुराण विद्या का आविष्कार प्रतीत होता है।

धार्मिक परम्परा में वेद के पश्चात् पुराण के महत्त्व का आकलन इस कथन से भी किया जा सकता है कि अंगों सहित वेदों का अध्ययन करने वाला भी द्विज पुराणज्ञान के बिना विचक्षण नहीं हो सकता।

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद् विचक्षणः।। वायुपुराण, १.१.१००

पौराणिक ज्ञान की छाया में ही वैदिक साहित्य का अर्थबोध संभव है। वेद संक्षिप्त सूत्ररूप है और पुराण उसकी व्याख्या प्रस्तुत कर मानवीय जीवन में उसकी उपयोगिता को प्रशस्त करता है। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार इतिहास और पुराण के द्वारा ही वेदार्थ का विस्तार होना चाहिए। पुराणज्ञान विहीन पुरुष से वेद को प्रहार का भय होता है।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।। (महाभारत, १.१.२६७)

वस्तुतः पुराण रूपी पूर्णचन्द्र से वेदों की ज्योत्स्ना ही प्रकाशित होती है। वेदों का प्रतीक तत्त्व पुराणों में किस प्रकार कथात्मक रूप ग्रहण करता है।

वेद, सूत्र ग्रन्थ तथा इतिहास पुराणों में पुराण स्वरूप के विषय में जो विभिन्न विवरण मिलते हैं। पुराण प्रवचन धारा के दो मुख्य सन्धि स्थल प्राप्त होते हैं।

प्रथम– कृष्ण द्वैपायन व्यास से प्रारम्भ कर पुराणों की क्रमिक धारा में प्रचलित पुराण ग्रन्थों की रचना हुई।

द्वितीय– व्यास जी से प्राचीन पुराणधारा।

डॉ. रमाशंकर भट्टाचार्य के अनुसार– अत्यन्त प्राचीन काल में पुराण एक अव्यवस्थित और बहुधा विकीर्ण परम्परागत लोकवृत्तात्मक विद्या विशेषमात्र था और कृष्ण द्वैपायन व्यास ने उस परम्परागत पुराण के साथ कुछ नवीन विषयों का संयोजन कर व्यवस्थित रूप से पुराण संहिता का निर्माण किया।

ध्यातव्य है कि संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, धर्मसूत्र और प्राचीन स्मृतियों एवं महाभारत के प्राचीन अंश में सर्वत्र पुराण शब्द का प्रयोग ही प्राप्त होता है, न कि पुराण संहिता शब्द का। जिससे ज्ञात होता है कि व्यास से पहले पुराण संहिता जैसा कोई व्यववस्थित पुराणशास्त्र नहीं था। व्यास के समय विभिन्न परम्पराओं में सुरक्षित व संरक्षित पुराणों की प्रचलित बहुविध लोकवृत्तात्मक शाकल्य जने–जने और गृहे–गृहे कूजित थी। उसको लोकहित की कामना से व्यास ने पुरातन विषयों के साथ आख्यानादि नवीन विषयों को जोड़कर पुराणसंहिता की रचना की।

डॉ. हाजरा ने Did Vyasa Own His Origin to Berosse शीर्षात्मक लेख में लिखा है कि ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर भी व्यास को ईसा से पूर्वकालीन ही मानना पड़ता है। बौधायन धर्मसूत्र २.५.२७ में व्यास स्मृत हैं। तैत्तिरीयारण्यक १.६.२ में व्यास

पाराशर्य का उल्लेख मिलता है। गोपथब्राह्मण १.१.२६ में व्यासः पुरोवाच कहा गया है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि व्यास की परम्परा ईसा से बहुत प्राचीन है।

8.3 पुराण शब्द का अर्थ

व्याकरण की व्युत्पत्ति के अनुसार **पुरा भवं पुराणम्** अर्थात् पुरानी घटनाओं के अर्थ से होता हैं। पुरा यह अव्यय पद है जिसकी व्युत्पत्ति है – **पुरति अग्रे गच्छति इति पुरा**। तुदादिगणपठित अग्र गमनार्थक पु धातु से औणादिक क प्रत्यय के योग से पुरा शब्द सिद्ध होता हैं। मेदिनीकोश के अनुसार इसका प्रयोग प्रबन्ध, अतीतकाल तथा संकट अर्थों में होता है–

स्यात्प्रबन्धे पुरातीते संकटागमिके तथा। मेदिनीकोश २५

पुरा भवम् व्युत्पत्तिपरक विग्रह में पुरा अव्यय से ट्यु प्रत्यय करने से पुराण शब्द निष्पन्न होता है। इस व्युत्पत्ति से यह स्पष्ट होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में जो कुछ हुआ, उसे पुराण कहते हैं। पुराण के सम्बन्ध में निरुक्तकार यास्क का कथन है– **पुराणं कस्मात्? पुरा नवं भवति। (निरुक्त–नैघण्टुक काण्ड)** अर्थात् जो प्राचीनकाल में नवीन था। यास्क के इस कथन से यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि जो साहित्य एक ओर पुरातनी सृष्टिविद्या वेदविद्या से अपना सम्बन्ध बनाये रखता है और दूसरी ओर नित्य नये नये रूप में उत्पन्न लोक जीवन से अपना सम्बन्ध जोड़े रहता है, वही पुराण है।

पुरा पुरातनम् अनिति जीवयति बोधयति इति पुराणं ग्रन्थविशेषः। पुरा पूर्वक अदादिगण की अण् धातु से अच् प्रत्यय लगने से पुराण शब्द बनता है। यद्यपि अच् प्रत्ययान्त होने से पुराण शब्द का प्रयोग पुल्लिंग में होना चाहिए, किन्तु **पुराणं पञ्चलक्षणम् (मत्स्यपुराण ५३.६४), पुराणं ग्रन्थेभेदे च क्लीवे त्रिषु पुरातने (नानार्थरत्नमाला, पृ. ७७)** में नपुंसकलिङ्ग में पुराण शब्द प्रयुक्त हुआ है। अतः व्यवहार में पुराण शब्द नपुसंक लिङ्ग मान्य है।

पुरा अतीतान् अर्थात् अणति कथयति व्युत्पत्ति में शब्दार्थक अण् धातु से पचादित्वात् अच् प्रत्यय करने से भी पुराण शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है कि प्राचीन वृत्तान्तों को कहने का ग्रन्थ। पुराण भी स्वयं उक्त अर्थ का समर्थन करता है–

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः। मत्स्यपुराण ५३.७२

यद्यपि पुराण शब्द के प्रत्न, प्रतन, पुरातन, चिरन्तन आदि अनेक पर्यायवाची शब्द हैं, तथापि यहां पुराण शब्द से महर्षि व्यास रचित प्राचीन कथायुक्त अष्टादश ग्रन्थ विशेष अर्थात् पुराण संहिता का ही बोध होता है। व्युत्पत्तिपरक अर्थ के अनुसार विद्वत्समुदाय पुराण को प्राचीन ग्रन्थ विशेष मानने में प्रायः एकमत हैं।

पद्मपुराण में प्राचीन परम्परा को व्यक्त करने में समर्थ शास्त्र को पुराण कहा गया है–

पुरा परम्परां व्यक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम्।। (पद्मपुराण १.२.५४)

वायुपुराण में भी प्राचीनकाल से वर्तमान पर्यन्त जीवन्त साहित्य को पुराण कहा है–

यस्मात्परा ह्यनतीदं पुराणं तेन कथ्यते।
निरुक्तिमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।। (वायुपुपुराण १.२.३)

ब्रह्माण्ड पुराण में प्राचीन काल में ऐसा ही था, को बतलाने वाला ग्रन्थ पुराण है–

यस्मात्पुरा ह्यभूच्चौतत्पुराणं तेन तत्स्मृतम्। ब्रह्माण्डपुराण १.१.१७३

निष्कर्षतः पुराणों का प्रतिपाद्य विषय प्राचीनकाल से सम्बन्धित वृतान्त है।

पुराण शब्द का प्रयोग विशेषण और संज्ञा के रूप में देखा जाता है। विशेषण के रूप में पुराण शब्द का अर्थ है पुराना, पुरातन या प्राचीन। उदाहरण के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में **"अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः" (२.२०), त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः" (११.३८)** आदि में प्रयुक्त पुराण शब्द प्राचीन अर्थ का द्योतक है। संज्ञा के रूप में पुराण शब्द का अर्थ है– पुरातन आख्यानों से युक्त ग्रन्थ। इस अर्थ में पुराण शब्द का प्राचीनतम प्रयोग अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। उदाहरणार्थ अधोलिखित सन्दर्भों में पुराण शब्द का प्रयोग देखा जा सकता है–

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं.... दिवि श्रितः। (अथर्ववेद ११.७.२४)
अथ नवमेऽहन् तानुपदिशति पुराणं वेदः।
सोऽयमिति किञ्चित् पुराणामचक्षीत्। (शतपथब्राह्मण १३.४.३.१३)

8.4 पुराण लक्षण

अमरकोश में पुराण को पञ्चलक्षण कहा गया है– **पुराणं पञ्चलक्षणम्।** वाराहपुराण के अनुसार पञ्चलक्षण के अन्तर्गत सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित पांच विषय परिगणित हैं। सर्ग से तात्पर्य सृष्टि, प्रतिसर्ग से लय और पुनः सृष्टि, वंश से देव तथा ऋषियों की वंशावली तथा वंशानुचरित से राजवंशों का इतिहास है। उपर्युक्त पांच विषय ही मुख्य रूप से पुराणों में वर्णित हैं। पुराणों के इन्हीं प्रतिपाद्य विषयों को ध्यान में रखकर अमरकोषकार ने पुराण का अपर नाम 'पञ्चलक्षण' रखा हैं। पुराण का पञ्चलक्षणत्व पुराणों में भी स्वीकृत है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंश मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ।। (वायुपुराण ४.१०)

विष्णुपुराण में पुराण का यही लक्षण है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च ततः।। (विष्णुपुराण ३.६.२५)

स्कन्द की सूत संहिता में वाराह पुराण के समान ही पुराण का लक्षण मिलता है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।। (सूतसंहिता, १.१.३३)

अन्य पुराणों में भी प्रायः पुराण का यही लक्षण किया गया है। वस्तुतः पुराण का यह लक्षण उसके प्रतिपाद्य विषय को लक्ष्य करके किया गया है। पुराणों के विषयों का अनुशीलन यह स्पष्ट करता है कि मुख्य रूप से सभी पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित इन पांच विषयों का ही विशद वर्णन हुआ है। इस पंचलक्षण का अभिप्राय है–यह सृष्टि किससे किस प्रकार हुई? इसका लय कहां और किस प्रकार होगा? सृष्टि के पदार्थों का उत्पत्ति क्रम किस प्रकार का है? मानव जाति के

प्रमुख ऋषि और राजा किस क्रम से अधिकारारूढ़ हुए? उनके चरित्र कैसे थे और सृष्टि एवं प्रलय के बीच कितना समय लगता है? इन विषयों की विवेचना जिसके द्वारा की जाय, वही पुराण है। विचार करने पर यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि पुराण का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ पुराकथायुक्त ग्रन्थविशेष और पुराण प्रतिपादित पञ्चलक्षण वस्तुतः एक ही विषय की ओर संकेत करते हैं और वह विषय है – उपर्युक्त पांच तत्वों का विस्तृत वर्णन। पुराण की व्युत्पत्ति और लक्षण दोनों में इन पांच विषयों का समावेश हो जाता है अतः **पुराणं पञ्चलक्षणम्** पुराणों का समान्य लक्षण मानने में कोई आपत्ति नही है। 'पञ्चलक्षण' शब्द पुराण का इतना अनिवार्य द्योतक स्वीकृत हो चुका था कि अमरसिंह ने कोष में इस शब्द का प्रयोग बिना किसी व्याख्या के ही किया है। व्याख्याविहीन पारिभाषिक शब्द का प्रयोग उसकी सार्वभौम लोकप्रियता का संकेत है।

पुराण के साथ पंचलक्षण का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि अमरकोष में बिना किसी व्याख्या के ही इस शब्द का प्रयोग हुआ है। पुराण की परिभाषा में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और वंशानुचरित को मुख्य विषय स्वीकृत किया गया है। विचार दृष्टि से ज्ञात होता है कि सृष्टिविद्या पुराण का प्रमुख विषय हैं, शेष उसके पूरक हैं, अन्य चार के बिना सृष्टि का पूर्णतया वर्णन करना असम्भव ही है। मानव समाज के इतिहास को समझने के लिए सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान काल तक के क्रमबद्ध रूप को समझना ही पड़ता है। पुराण का प्रारम्भ भी सृष्टि से होकर अन्त प्रलय पर होता है। सृष्टि और प्रलय के मध्य होने वाले कालखण्डों अर्थात् मन्वन्तरों, राजवंशों और प्रतापी राजाओं का विवरण देना ही पुराण का पुराणत्व है। इनका संक्षिप्त विवेचन निम्न है–

१. **सर्ग –** संसार तथा उसमें निहित विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति सर्ग कहलाती है। भागवत में सर्ग का लक्षण निम्न रूप से प्राप्त होता है –

अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते।। (भागवत पुराण १२.७.११)

अर्थात मूल प्रकृति में लीन गुण से क्षुब्ध होने पर महत् तत्त्व की सृष्टि होती है। महत् तत्त्व से त्रिविध अहंकार, अहंकार से पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय तथा पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति–क्रम का नाम सर्ग है।

पुराणों में सृष्टि अर्थात् सर्ग का क्रम इस प्रकार प्राप्त होता है– क्षीर सागर में भगवान् नारायण शेषनाग पर शयन कर रहे हैं, जब इनकी इच्छा सृजन की हुई तो नाभि से कमल का आविर्भाव हुआ और उस कमल से चतुर्भुज ब्रह्मा का प्राकट्य हुआ। यही ब्रह्मा सम्पूर्ण स्थावर और जगमात्मक जगत् के रचनाकार माने जाते हैं।

२. **प्रतिसर्ग –** सर्ग अर्थात् सृष्टि से विपरीत वस्तु प्रतिसर्ग अर्थात् प्रलय कहलाती है। विष्णुपुराण में प्रतिसर्ग के स्थान में प्रतिसंचार शब्द का प्रयोग मिलता है –

प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतं प्रलये तु यतः।
तस्मात प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसंचरः।। विष्णुपुराण १.२.२५

किन्तु भागवत (३.१०.१४) में प्रलय के लिए प्रतिसंक्रम शब्द का तो प्रयोग मिलता ही है साथ ही श्रीमद्भागवत में प्रतिसर्ग के स्थान में संस्था शब्द भी प्रयुक्त हुआ है –

नैमित्तिकः प्राकतिको नित्य आत्यन्तिको लयः।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः।। श्रीमद्भागवत १२.७.१७

इस ब्रह्माण्ड का स्वभाव से ही प्रलय हो जाता है और यह प्रलय चार प्रकार का है। नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य तथा आत्यन्तिक। यही संस्था शब्द से अभिहित है। यह शब्द प्रतिसर्ग के समान ही संक्रम (सर्ग) से विपरीत तत्त्व का द्योतक है।

३. **वंश** – श्रीमद्भागवत में वंश की परिभाषा है –

राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः।। श्रीमद्भागवत १२.७.१६

अर्थात ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न किये गये राजाओं की भूत, वर्तमान तथा भविष्य कालिक सन्तति (सन्तान) परम्परा को वंश कहते हैं। भागवत में वंश को राजवंश तक ही सीमित रखा गया है, किन्तु अन्य पुराणों में वंश के अन्तर्गत ऋषिवंश का वर्णन भी प्राप्त होता है।

४. मन्वन्तर – यह शब्द पुराण के अनुसार सृष्टि के विभिन्न कालखण्डों का द्योतक है। चतुर्दश मन्वन्तर होते हैं और प्रत्येक मन्वन्तर का अधिपति एक विशिष्ट मनु होता है जिसके सहयोगी पांच पदार्थ भी होते हैं।

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोंऽशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते।। श्रीमद्भागवत १२.७.१५

मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान के अंशावतार इन छः विशेषताओं से युक्त समय को मन्वन्तर कहते हैं।

५. **वंशानुचरित** – मनु आदि वंशों में उत्पन्न वंशधरों तथा राजाओं का विशिष्ट विवरण जिसमें रहता है, उसे वंशानुचरित कहते हैं। यहां पर मानव वंश में प्रसूत महर्षियों एवं राजाओं का चरित्र भी समाविष्ट है।

पुराणों में महर्षि चरित्र की अपेक्षा राजचरित्र का ही विशेष विवरण उपलब्ध है। राजनीतिशास्त्र में **पुराणं पञ्चलक्षणम्** का एक नया ही संकेत मिलता है जो पूर्वनिर्दिष्ट लक्षण से भिन्न है। कौटिल्य अर्थशास्त्र (१.५) की व्याख्या में जयमंगल ने किसी प्राचीन ग्रन्थ से निम्न श्लोक उद्धृत किया है–

सृष्टिप्रवृत्ति संहार–धर्म–मोक्ष प्रयोजनम्।
ब्रह्मभिर्विविधैः प्रोक्तं पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

प्रकृत श्लोक में पञ्चलक्षण की नवीन व्याख्या की गई है और धर्म को पुराण का अविभाज्य लक्षण स्वीकृत किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि मूल रूप से पुराण में धार्मिक विषयों का समावेश अभीष्ट था। **मन्वन्तराणि सद्धर्मः** कहकर भागवत ने भी मन्वन्तर के अन्तर्गत धर्म का उपन्यास न्याय माना है।

उपर्युक्त विवरण में वंश के अन्तर्गत देवों तथा ऋषियों के वंशों का भी समावेश समझना चाहिए। इन विषयों को पुराण का मौलिक वर्ण्य विषय मानने में प्रधान कारण सूत के कार्यों के साथ इसकी पूर्ण संगति है। पुराण का वाचन तथा व्याख्यान करना सूत का प्रधान कार्य था। सूत का कर्तव्य था देवों, ऋषियों, तेजस्वी राजाओं तथा लोकप्रथित महात्माओं के वंशों का धारण करना –

देवतानामृषीणां च राज्ञां चामितेजसाम्।
वंशानां धारणं कार्य श्रुतानां च महात्मनाम्।। (वायुपुराण १.३१–३२)

वस्तुतः पुराण की धारा वैदिक धारा से पृथक थी जिसके संरक्षण, संवर्धन और प्रचार–प्रसार का कार्य सूत की अधिकार सीमा के भीतर था।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में उमाशंकर ऋषि कहते हैं कि उपर्युक्त पंच लक्षण तब बने जब इन विषयों से युक्त पुराणों का रूप स्पष्ट हो चुका था। किंतु कालक्रम से पुराणों में अन्य अनेक विषय भी संकलित होने लगे और मूल पुराण का लक्षण अभिभूत हो गया था। केवल मात्र विष्णु पुराण में यह पंचलक्षण घटित होता है, जबकि अन्य पुराणों में आंशिक रूप से ही घटित होता है। कुछ ऐसे भी पुराण हैं जो उक्त लक्षणों का स्पर्श तक नहीं करते हैं। वर्तमान में पुराणों का स्वरूप दार्शनिक अथवा ऐतिहासिक नहीं अपितु धार्मिक हो गया है, जिससे अधिकांश पुराण विष्णु अथवा शिव की भक्ति उपासना को ही समर्पित है। विभिन्न देवताओं की स्तुतियां, पुण्य लाभ के लिए होने वाले व्रत, उत्सव तथा तीर्थ आदि का विस्तृत वर्णन सभी पुराणों में है। वहीं अग्निपुराण में ज्योतिष, शरीर, विज्ञान, व्याकरण, शस्त्र प्रयोग, चिकित्सा, साहित्य शास्त्र आदि का विवरण दिया गया है।

वंशानुचरित में प्राचीन राजवंशों का विवरण प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण, वायुपुराण, ब्रह्मांडपुराण, भविष्यपुराण, विष्णुपुराण, भागवतपुराण और गरुड़पुराण इसके उदाहरण हैं। सूर्यवंश और चंद्रवंश के प्रथम राजाओं से आरम्भ कर महाभारत युद्ध में भाग लेने वाले राजाओं तक वर्णन प्राप्त होता है क्योंकि विद्वानों का मानना है कि पुराण व्यास द्वारा रचित हैं और व्यास पांडवों के समकालीन हैं, जिससे राजवंशों का वर्णन तब तक भूतकाल में है। इसके पश्चात् कलियुग के राजाओं का वर्णन भविष्य काल में है। जिसमें कलियुग के शिशुनाग, नंद, मौर्य, शुंग, आंध्र तथा गुप्त वंश के राजाओं की सूची प्राप्त होती है। इसलिए पुराणों को भारत के प्राचीन राजनीतिक इतिहास के स्रोत के रूप में स्वीकार किया जाता है। वी. ए. स्मिथ के अनुसार विष्णुपुराण में मौर्यवंश तथा मत्स्यपुराण में आंध्रवंश, वायुपुराण में चंद्रगुप्त प्रथम के काल की राज्य व्यवस्था का वर्णन है। पुराण राजाओं की सूचियों में आभीर, गर्दभ, शक, यवन, तुषार, हूण इत्यादि शूद्र तथा म्लेच्छ राजाओं की वंशावली को प्रस्तुत करते हैं।

8.4.1 दश लक्षण

श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में दशलक्षण महापुराण के तथा पञ्चलक्षण क्षुल्लक पुराण के कहे गये हैं। भागवत के द्वादश स्कन्ध के अनुसार ये दश लक्षण हैं –

सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः।। भागवत १२.७.६

वस्तुतः उपर्युक्त दश लक्षण पूर्वोक्त पञ्चलक्षण के विस्तार मात्र ही हैं। इन में कोई ऐसी नयी बात नहीं है, जो पूर्वोक्त पांच लक्षणों से बोधित न होती हो। भागवत के दशम स्कन्ध में सर्ग, प्रतिसर्ग (प्रलय संस्था), वंश, वंशानुचरित और मन्वन्तर इन पांच लक्षणों का निरूपण इन्हीं शब्दों में किया गया है। अवशिष्ट जो पांच हैं उनमें विसर्ग सृष्टि का ही अवान्तर भेद है। अपाश्रय शब्द से ईश्वर का ग्रहण होता है और वह ईश्वर सृष्टि का निर्माता है। अतः सृष्टि वर्णन में उसका अन्तर्भाव हो सकता है। हेतु

शब्द से अभिहित कर्म वासना सृष्टि की कारण सामग्री के अन्तर्गत है। अतः वह भी सृष्टिवर्णन में ही अन्तर्भूत होती है। वृत्ति शब्द से कथित परस्पर उपमर्दकभाव स्पष्ट रूप से वंशानुचरित में अन्तर्भूत होता है। रक्षा भी वंशानुचरित के ही अन्तर्गत है क्योंकि इसमें भगवान् के अवतारों का वर्णन है और ये अवतार किसी न किसी वंश में ही होते हैं। अतः वंशानुचरित में अवतारों का भी संग्रह अभिप्रेत है। फलतः यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणों के ये दश लक्षण पूर्वोक्त पांच लक्षणों के ही अन्तर्भूत हैं। भागवत आदि में इनके निरूपण का अभिप्राय है। इन पुराणों में भगवत् चरित का वर्णन ही मुख्य प्रयोजन है, जैसा कि भागवत के प्रारंभ में उल्लेख है। अतः इनमें भगवत् चरित चित्रण की प्रमुखता से उनकी उपासना के अंगों को पृथक समझाने के लिए परिगणित किया गया है। इसी सन्दर्भ में यह निर्देश करना भी प्रासंगिक है कि उपर्युक्त पांच विषयों के अतिरिक्त लोकोपयोगी होने के कारण पुराणों में चार विषयों का विशेष रूप से संग्रह किया गया है। ये विषय हैं– आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि। विष्णु पुराण में इन चारों विषयों से युक्त पुराण संहिता का स्पष्ट उल्लेख है –

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः।। ३.६.१५

आख्यान और उपाख्यान की परिभाषा विष्णुपुराण की श्रीधरी टीका में दी गयी है। स्वयं देखी हुई बात की कथा आख्यान है और सुनी हुई बात का कथन उपाख्यान है।

स्वयंदृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः।
श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते।। – विष्णुपुराण, श्रीधरीटीका

वेदों में जो आख्यायिकायें संकेत रूप से आयीं हैं, उनका विस्तार पुराणों में किया गया है। उन्हें ही 'आख्यान' कहना चाहिए। उपाख्यान वे हैं जो वेद या प्राचीन वाङ्मय में संकेतित नहीं है, पुराणों में ही उनका संकलन हुआ है। नल आदि राजाओं के चरित ऐसे ही उपाख्यान हैं। अतिरिक्त विषयों में तीसरा स्थान गाथा का है जो किसी महापुरुष के अनुभव वाक्य हैं। यद्यपि कल्प शुद्धि पुराणों के मुख्य लक्षण में ही आती हैं, तथापि इस अतिरिक्त विषय के रूप में गृहीत कल्प शुद्धि का आशय धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित कल्पशुद्धि है।

8.5 पुराणों की संख्या

भारतीय ज्ञान परम्परा में पाते हैं कि महाभारत में १८ पर्व हैं, भगवद्गीता के अध्यायों की संख्या १८ है तथा भागवत पुराण की श्लोक संख्या १८ हजार है। इसी प्रकार पुराणों की संख्या भी १८ ही है। उपपुराण भी १८ हैं। विद्वज्जन पुराणों की अष्टादश संख्या को सहेतुक मानती है। अष्टादश संख्या होने का तात्पर्य निम्नलिखित है –

क) पुराण के पञ्चलक्षण में सृष्टितत्व का वर्णन प्रमुख है। इसी सृष्टिवर्णन के विकसन में शेष चार–प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंश तथा वंशानुचरित का समावेश किया गया है। पुराण की अष्टादश संख्या इस सृष्टि तत्त्व से सम्बद्ध है। शतपथ ब्राह्मण और यजुर्वेद में १२ मास, ५ ऋतु और एक संवत्सर परिगणित है, जिनकी सम्मिलित संख्या १८ है। इस प्रकार सृष्टि से १८ संख्या के सम्बद्ध होने के कारण पुराणों का अष्टादशत्व युक्तिसंगत है।

ख) वेद में सृष्टि का आरम्भ वैदिक छन्दों में स्वीकृत है। वेद के सात छन्दों में गायत्री तथा विराट की प्रधानता है, जिनका सृष्टि तत्त्व से गहरा संबंध है। गायत्री पृथ्वीस्थानीया प्रकृतिरूपा है और विराट धुस्थानीय पुरुष रूप है। (धौष्पिता पृथिवी माता) गायत्री के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर और विराट के दस अक्षर मिलकर १८ संख्या होती है। परिणामतः छन्दः सृष्टितत्व की दृष्टि से सृष्टि प्रतिपादक पुराणों की १५ संख्या समुचित है।

ग) दृश्य ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थ निवेश दृष्टि से तीन लोकों से सम्बद्ध है– पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश। प्रत्येक पदार्थ की छः अवस्थाएँ हैं– सत्ता, उत्पत्ति, वृद्धि, पक्वता, हास तथा विनाश । ये छहों अवस्थाएँ त्रिलोक के समस्त पदार्थों के साथ नित्य सम्बद्ध हैं। पुराण इन पदार्थों के सर्ग प्रतिसर्ग (सृष्टि प्रलय) का वर्णन करता है। अतः उसकी १८ संख्या न्याय संगत है।

ङ) पुराण मुख्यतः पुरुष परमात्मा का प्रतिपादन करता है। आत्मा स्वरूपतः एक है, किन्तु उपाधि तथा अवस्था भेद से वह १८ प्रकार का होता है। इन अष्टादश आत्मा का प्रतिपादन होने से पुराण की अठारह संख्या मानी गई है।

पुराणों का विभाजन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्राचीन एवं परवर्ती रूप में किया जाता है, जिसमें प्राचीन का अर्थ पंचलक्षण को स्वीकारना है। तदानुसार वायुपुराण, ब्रह्मापुराण और विष्णुपुराण को प्राचीन कहा गया है। इनसे इतर पुराणों में उक्त पंच लक्षण का अनुपालन न होने से परवर्ती पुराण कहलाते हैं। पुराणों का एक अन्य विभाजन सात्विकता, तामस और राजस के रूप में भी किया जाता है, जो क्रमशः विष्णु, शिव और ब्रह्मा अथवा अन्य देवताओं के महत्व के आधार पर है। उमाशंकर शर्मा ऋषि इस विभाजन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक मानते हैं। इसके अनुसार यह विभाजन निम्न है –

क. सात्विक (वैष्णव) पुराण – विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुड़, पद्म, वराह।

ख. तामस (शैव) पुराण – मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, अग्नि, स्कन्द।

ग. राजस (ब्राह्म) पुराण – ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, माक्रण्डेय, ब्रह्म, वामन, भविष्य।

देवताओं की प्रशस्ति के संबंध में कहा गया है –

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिः भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिरू।। (स्कन्दपुराण केदारखण्ड, १)

मत्स्यपुराण (५३.६८–६) में सात्विक पुराणों में विष्णु का, राजस पुराणों में ब्रह्मा का, तामस पुराणों में अग्नि और शिव का एवं संकीर्ण पुराणों में सरस्वती और पितरों का महक में प्रमुख रूप से दिखाया गया है।

सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः।।

तद्वदग्नेषु माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
सङ्कीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते।।

इन परम्परागत विभाजनों से अधिक सन्तोषप्रद वर्गीकरण आधुनिक दृष्टि से महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री ने किया है जो पुराणों की विषय वस्तु की गम्भीर समीक्षा पर आश्रित है। उन्होंने विषय–वस्तु के आधार पुराणों को निम्नाङ्कित छह वर्गों में रखा है

१) प्रथम वर्ग में समस्त वाङ्मय के कोष (विश्वकोष) का रूप धारण करने वाले गरुड, अग्नि तथा नारद पुराण रखे जा सकते हैं। इनमें संस्कृत भाषा के ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी सभी श्रेष्ठ ग्रन्थों का सार प्रस्तुत है जैसे– आयुर्वेद, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, संगीत, ज्योतिष आदि। अन्य पौराणिक विषय भी इनमें निहित हैं।

२) द्वितीय वर्ग में पद्यम स्कन्द तथा भविष्य पुराण हैं। इन पुराणों की मौलिक सामग्री बार बार किये गये संशोधनों के कारण लुप्तप्राय हो गयी है।

३) तृतीय वर्ग के पुराणों में दो बार सामान्य संशोधन किये गये थे। इनमें ब्रह्मवैवर्त पुराण आता हैं। इन पुराणों में मौलिक रचना ग्रन्थ के बीच में है तथा ओर अतिरिक्त सामग्री का संकलन दो–दो बार किया गया।

४) चतुर्थ वर्ग ऐतिहासिक पुराणों का है जिसमें ब्रह्माण्ड तथा लुप्त हो चुके हैं, दोनों निहित हैं।

५) पञ्चम वर्ग में साम्प्रदायिक पुराणों की गणना करायी गयी है– लिङ्ग, वामन, मार्कण्डेय। लिङ्गपुराण में शिव के प्रतीक के रूप में लिङ्गपूजा का महत्त्व निरूपित है।

६) षष्ठ वर्ग में शास्त्रीजी ने उन पुराणों को रखा है जो प्राचीन थे किन्तु इतनी बार संशोधित हुए कि इनका स्वरूप नष्ट हो गया। इनमें वराह, कूर्म तथा मत्स्य पुराण हैं। विष्णु के इन अवतार के द्वारा ही सम्पूर्ण प्रवचन की अपेक्षा इन पुराणों में की जाती है किन्तु वराह द्वारा वराहपुराण के केवल आधे भाग का ही प्रवचन हुआ है, मत्स्यपुराण में मत्स्य केवल तृतीयांश से ही सम्बद्ध और कूर्मपुराण का अष्टमांश मात्र कूर्म प्रोक्त है।

इस विभाजन में भी कुछ असंगतियाँ हैं किन्तु अद्यावधि किये गये विभाजन में सन्तोषप्रद है। विष्णुपुराण को इसमें स्थान नहीं दिया गया है क्योंकि पञ्चलक्षण पर सर्वाधिक खरा उतरने के कारण यह प्राचीनतम रूप में है।

8.6 पुराणों का क्रम

पुराण का विकास महापुराण और उपपुराण के रूप में हुआ। इनमें महापुराण प्राचीनतर हैं। अष्टादश पुराणों का एक नियत क्रम है। पुराणों में सभी पुराणों के नाम तथा उनका ग्रन्थ–परिमाण प्राप्त होते हैं। वे नाम प्रायः क्रम से ही हैं। किन्तु क्वचिद् पुराणों का क्रमभेद भी देखा जाता है। देवीपुराण में अति संक्षेप में पुराणों का नाम निर्देश एक ही श्लोक में प्रस्तुत किया गया है–

मद्वयं भद्वयं चौव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापकूस्कलिङ्गानि पुराणानि विदुर्बुधाः॥

अर्थात् मकार से दो मत्स्य और मार्कण्डेय पुराण, भकार से भी दो भागवत और भविष्य पुराण, ब्र से ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त और ब्रह्माण्ड पुराण, वकारादि चार पुराण विष्णु, वायु, वामन और वराह पुराण, अकार से अग्निपुराण, ना से नारदपुराण, पकार से पद्मपुराण, कू से कूर्मपुराण, स्क से स्कन्दपुराण, लि से लिङ्गपुराण, गकार से गरुडपुराण हैं। यहां कोई विशेष क्रम नहीं है। पुराणों का क्रम निम्न है–

1. ब्रह्मपुराण
2. पद्मपुराण
3. विष्णुपुराण
4. वायुपुराण अथवा शिवपुराण
5. भागवतपुराण
6. नारदपुराण
7. माक्रण्डेय पुराण
8. अग्निपुराण
9. भविष्यपुराण
10. ब्रह्मवैवर्तपुराण
11. लिङ्गपुराण
12. वराहपुराण
13. स्कन्दपुराण
14. वामनपुराण
15. कूर्मपुराण
16. मत्स्यपुराण
17. गरुडपुराण
18. ब्रह्माण्डपुराण

8.7 सारांश

पुराणों का मनन करने से ज्ञात होता है कि इनको एक नियत क्रम में रखने का रहस्यमय कारण है। शास्त्रों में दो प्रकार से क्रम चलता है – आरोह और अवरोह क्रम। जिसे नीचे से ऊपर को जाना और ऊपर से नीचे को उतरना कहा जा सकता है। दृश्य कार्य के माध्यम से उसकी कारण परम्परा में जिज्ञासा के अनुसार प्रवेश करते जाना, आरोह क्रम कहलाता है। और मूल तत्त्व को प्रारम्भ में कहकर उसका क्रम से स्थूल विस्तार को कहना अवरोह क्रम कहलाता है। पुराणों में आरम्भ से दशम पुराण तक आरोह क्रम तथा उससे आगे अन्त तक अवरोह क्रम है।

पुराणों ने वैदिक परंपरा से लेकर आधुनिक काल तक मानव जाति को प्रेरित, सुसंस्कृत, समृद्ध एवं ज्ञानवान् बनाया है। इसीलिए आज के इस संगणक युग में भी मानव जाति इस अनुपम ज्ञान की धरोहर को अपने अंदर समेटे हुए हैं। पुराण अर्थात् **पुरा**

नवं भवति इति पुराणम्, पुरा पुरातनं अनिति जीवयति बोधयति इति पुराणं ग्रन्थविशेषः । भारतीय पुराणों का अध्ययन करते समय एक शंका सभी विद्वानों के समक्ष उपस्थित हुई है वह यह कि पुराण का वास्तविक लक्षण क्या है ? कुछ लोग पुराण के पांच लक्षण स्वीकार करते हैं तथा कुछ अन्य आचार्य 10 लक्षण बताते हैं? उसी को स्पष्ट करते हुए दोनों का मत दिया है। आचार्यों ने 18 पुराणों को ही स्वीकार किया है, इसमें आचार्य तर्क देते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपरा में महाभारत में भी 18 पर्व है तथा श्रीकृष्ण द्वारा कही गई भगवद्गीता में अध्यायों की संख्या भी अट्ठारह है तथा भागवत पुराण में श्लोकों की संख्या 18000 मानी गई है। इसी प्रकार पुराणों की संख्या भी अट्ठारह ही माननी चाहिए।

8.8 अभ्यास

१. पुराण किसे कहते हैं?

२. पुराण के पाँच लक्षण लिखिए।

३. पुराण के दस लक्षणों का विवरण दीजिए।

४. पुराण कितने हैं और कौन से हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY